शोध मंथन ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X Impact Factor 6.726 (SJIF)
Vol. X, No.IV, pp (1119-1124) Oct.- Dec. 2019

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में देवदासी प्रथा : एक विवेचनात्मक अध्ययन

रक्षा सिंह,
रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग,
एम0 जे0 पी0 रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
Email : rakshabcb@gmail.com

सारांश

हिन्दू धर्म में संगीत के माध्यम से देवताओं की भक्ति एवं अराधना करना श्रेष्ठ माना जाता था। मंदिरों के निर्माण के पश्चात् इन मंदिरों में स्थापित देवताओं की विभिन्न विधियों से पूजा अर्चना की जाने लगी। नृत्य, गान एवं वाद्य के द्वारा मंदिर स्थित देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मंदिर में देवदासी रखने की प्रथा का प्रारम्भ हुआ। पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में देवदासी प्रथा के प्रचलन का ज्ञान यात्रियों के विवरण से इनके सम्बन्ध में साक्ष्य प्राप्त होते हैं। कुट्टनीमतम्, राजतरंगिणी, प्रबन्ध चिन्तामणि इत्यादि ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि मंदिर में नृत्य–गान करने के लिए इन्हें वेतन दिया जाता था। कभी–कभी इनका विवाह भी होता था और ये रानी भी बन सकती थीं। अरबी यात्रा अलबरूनी तथा चीनी यात्री चाउजुउकुआ ने भी मंदिरों में नृत्यगान को प्रस्तुत करने वाली देवदासियों का उदाहरण दिया है। वर्मलाट के वसंतगढ़, विजयसेन की देवपाड़ा प्रशस्ति आदि से देवदासियों के मंदिरों में निवास करने का साक्ष्य प्रस्तुत करने से है। ये राज्य में सम्मानीय पदों पर नियुक्त की जाती थीं। भक्ति, पवित्रता के साथ प्रारम्भ हुई इस प्रथा में समय के साथ कुछ बुराईयाँ भी आ गयी थीं। देवदासियों की संख्या अधिक होने पर उन्हें अपने जीवनयापन के लिए वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ी जिससे समाज में इस प्रथा का विरोध होने लगा।

प्रस्तावना

प्राचीन हिन्दू धर्म और समाज में देवदासी प्रथा अत्यन्त पवित्र मानी जाती थी। भक्ति, समर्पण एवं साधनामय जीवन व्यतीत करने के कारण समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं। भारतीय समाज में मंदिर अपने निर्माण के साथ ही हिन्दुओं की आस्था के केन्द्र बिन्दु बन गये। मंदिरों के प्रति अपार श्रद्धा और भक्ति होने के कारण लोग मंदिर में स्थित अपने इष्ट देव को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न प्रयत्न करते रहते थे। अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए लोग मन्नत माँगते थे और जब सौभाग्यवश मन्नत पूरी हो जाती थी तो वे देवताओं को भेंट अर्पित करते थे। इसी मान्यता के अनुसार देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोग कन्याओं को मंदिरों में दान करने लगे। मंदिर स्थित देवताओं की सेवा के लिए समर्पित की गयी ये कन्यायें

देवदासी कहलाती थीं। लोग कुँवारी कन्याओं को मंदिर के लिए दान करते समय कन्याओं का विवाह देव प्रतिमाओं के साथ कर देते थे। इन देववासियों का प्रमुख कार्य नृत्य और संगीत के माध्यम से देवताओं को प्रसन्न करना तथा मंदिर की सेवा करना था। नृत्य, संगीत और वाद्य द्वारा देवताओं की अराधना करना भक्ति का एक श्रेष्ठ साधन माना जाता था। मत्स्यपुराण के अनुसार नृत्य, संगीत से देवताओं की सेवा करने वाली नारियों को विष्णु लोक प्राप्त होता है।[1] प्रस्तुत शोध पत्र मेरे पी–एच0डी0 शोध प्रबन्ध का एक भाग है।

देवदासियाँ पूर्व मध्यकालीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का भी एक अंग थी। इससे सम्बन्धित प्राचीनयुगीन मान्यतायें एवं विचारधारायें इस काल में विद्यमान थीं। देवदासियों की उपस्थिति और नृत्य, संगीत आदि कार्यक्रमों ने भारतीय मंदिरों को गुंजायमान बना दिया था। ये मंदिर के वैभव और प्रसिद्धि की कारक समझी जाती थीं। आलोच्यकालीन समाज में इस प्रथा के उदाहरण मिलते हैं। कुट्टनीमतम् से देवदासियों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है। इसके अनुसार देवदासियों को भगवान के मंदिर में नृत्यगान करने के लिए वेतन दिया जाता था।[2] इस ग्रन्थ में एक स्थान पर देवदासियों के चारित्रिक गुणों को बताते हुए कहा गया है कि इनके प्रेम सम्बन्ध होते थे और ये धन के लिए निर्धन प्रेमी को छोड़कर धनवान प्रेमी के पास चली जाती थीं।[3] यह तथ्य इस सत्य को प्रकट करता है कि देवदासियों के लिए धन ही सर्वस्व होता था। जिसके लिए वे किसी की भावनाओं से भी खेल सकती थीं।

ये लोगों के मनोभावों को पढ़ने में सिद्धस्थ होती थी। कुट्टनीमतम् में एक स्थान पर वर्णित है कि देवदसियाँ मंदिर में रहने वाले धूर्त साधुओं तथा उनके बनावटी व्यवहारों को पहचानने में सिद्धस्थ थीं।[4]

विवेच्यकालीन हिन्दू समाज में जब धर्म के नाम पर लोगों में अंधविश्वास और पाखण्ड़ फैल गया था तब इसका प्रभाव देवदासियों पर भी पड़ा। शासक वर्ग के लोग समाज में आयी इस विकृति का लाभ स्वयं के लिए करने लगे तथा मंदिरों में रहने वाली नारियों को उपभोग की वस्तु समझकर उनको अपने व्यक्तिगत आनन्द के लिए रखने लगे। जब किसी व्यक्ति को अपनी पत्नी से किसी कारणवश सम्बन्ध विच्छेद करना होता था तो वह उसे मंदिर में नर्तकी के रूप में रख देता था। इससे उस नारी का अपने पति से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता था। तथा वह पुनः किसी अन्य पुरूष से विवाह करने के लिए भी स्वतंत्र हो जाती थी एवं इस तरह किया गया समझौता समाज में स्वीकार होता था। राजतरंगिणी से इस तथ्य का साक्ष्य प्राप्त होता है। इसके अनुसार दुलर्भक प्रतापदिव्य द्वितीय को एक विवाहित स्त्री नरेन्द्रप्रभा से प्रेम हो जाता है, परन्तु समाज के भय से वह उस स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। इस बात का पता जब उस स्त्री के पति को चला तो उसने राजा से अपनी पत्नी के साथ विवाह करने के लिए कहा परन्तु राजा ने लोकलाज वश मना कर दिया, तब उसने अपनी पत्नी को मंदिर में नर्तकी के रूप में रखने की प्रार्थना की। उसके पश्चात् राजा ने उस स्त्री नरेन्द्र प्रभा के साथ विवाह कर लिया।[5] अतः राजा अपनी प्रेयसी को भी मंदिर में रख देते थे। इस काल में देव मंदिरो में नृत्यगान करना कुल परम्परा भी बन गया था। जिसका पता हमें राजतरंगिणी के इस कथांनक से चलता है। राजा लीलतादित्य

को निर्जन वन में दो नारियाँ नृत्यागान करती हुई दिखायी दीं तो राजा ने आश्चर्यपूर्वक उनसे पूछा कि वे यहाँ नृत्यागान क्यों कर रही हैं। उन नारियों ने राजा से कहा कि हम देवगृह की आश्रिता हैं और यहीं पास में शूरवर्धमान ग्राम में रहती हैं। ऐसी मान्यता है कि हमारी माता की जीविका इसी स्थान से चलती थी, इसलिए इसको मानते हुए हमारे कुल द्वारा नियमित रूप से यहाँ नृत्यागान किया जाता है। राजा ने जब उस स्थान की खुदाई करवाई तो उस स्थान पर एक मंदिर प्राप्त हुआ और उस मंदिर में राम लक्ष्मण द्वारा निर्मित दो प्रतिमायें भी प्राप्त हुई।[6]

राजतरंगिणी से ही देवदासियों के साथ विवाह करने का साक्ष्य प्राप्त होता है। कश्मीर के शासक उत्कर्ष की रानी सहजा विवाह करने से पहले मंदिर में नृत्यगाान करने वाली देवदासी थी।[7] कल्हण ने मंदिरों में रहने वाली वृद्ध देवदासियों का भी वर्णन किया है।[8] इस काल में लेखकों द्वारा भी अपनी कन्या देवदासी के रूप में अर्पित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। गीतगोविन्द के लेखक जयदेव ने अपनी पुत्री पद्मावती को मंदिर में देवताओं की मूर्तियों की सेवा करने के लिए अर्पित कर दी थी।[9] देवदासियों का उदाहरण प्रबन्ध चिन्तामणि से भी प्राप्त होता है। मेरूतुग ने प्रबन्ध चिन्तामणि में कुमारविहार के मंदिर में नृत्यागान करने वाली देवदासियों का वर्णन किया है। ये सभी अपने नृत्य और संगीत द्वारा देवताओं को प्रसन्न करती थीं।[10] स्ट्रगल फॉर एम्पायर में उल्लिखित है कि गजनवी के मंदिर विधवंस के समय 350 नृत्य करने वाली देवदासियाँ थीं।[11]

देवदासियों का उल्लेख इस युग के विदेशी लेखकों द्वारा भी किया गया है। अलबरूनी ने सोमनाथ मंदिर में 500 देवदासियों के उपलब्ध होने की बात कही है।[12] अलबरूनी का कहना है कि इस प्रथा से राजा को राजस्व प्राप्त होता था। जिससे राजा को शक्तिशाली सेना बनाने में मदद मिलती थी तथा इस प्रथा द्वारा सैनिकों की कामुकता की भावना को इस शान्त किया जाता था। तारीख ए अल्फी से भी इस मंदिर का उदाहरण प्राप्त होता है। इसके अनुसार इस मंदिर में लगभग 500 नर्तकियाँ थीं जो ईश्वर की मूर्ति के सामने संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करती थीं। इसमें यह भी कहा गया है कि यह प्रथा उस समय समाज के लोगों में इतनी अधिक मान्य थी कि राजा–महाराजा तक अपनी कन्याओं को मंदिर में स्थित भगवान की सेवा के लिए दान में दे देते थे।[13] चीनी यात्री चाउजुउकुआ ने भी कहा है कि गुजरात में लगभग 20 हजार देवदासियाँ थीं जो चार हजार मंदिरों में नियुक्त की गयी थीं। ये प्रतिदिन भगवान के भोजन के समय और फूल अर्पित किये जाते समय अपने नृत्य–गान की प्रस्तुति देती थीं।[14]

आलोच्यकालीन समाज में देवदासियाँ केवल नृत्य, संगीत का कार्यक्रम ही प्रस्तुत नहीं करती थीं अपितु वे राज्य में उच्च पदों पर नियुक्त भी की जाती थीं। वे अपनी योग्यतानुसार सम्मानीय पदों पर नियुक्त होकर अपनी श्रेष्ठता को प्रदर्शित करती थी। कश्मीर के शासक जयापीड़ ने भगवान कार्तिकेय के मंदिर में नृत्य करने वाली नर्तकी कमला देवी को महाप्रतीहार पीड़ा (राजभवन के प्रबन्ध का देख रेख करने वाली मुख्य व्यवस्थापिका) नामक अधिकार प्रदान किया था।[15] चन्देल शासको ने भी अपने शासन काल में देवदासियों को राजदरबार में उच्च पद प्रदान किया था। मदनवर्मा के कलिंजर स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि भगवान शिव के नीलकण्ठ मंदिर में नृत्य करने वाली महानृत्यांगना पद्मावती को राजदरबार में उच्च पद प्रदान किया गया

था। चन्देल शासकों के दरबार में वह महापुरोहित संग्रामसिंह के बाद दूसरे स्थान पर ही विद्यमान थी।[16] विवेच्यकालीन अभिलेखों से भी ज्ञात देवदासियों का उदाहरण मिलता है। वर्मलाट स्थित वसंतगढ़ अभिलेख से श्रीमाता मंदिर की देवदासी बूटा का साक्ष्य प्राप्त होता है।[17] विजयसेन की देवपाड़ा प्रशस्ति मे उल्लिखित है कि भगवान शिव के प्रद्युम्नेश्वर मंदिर में कई देवदासियाँ निवास करती थीं।[18] भुवनेश्वर से प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ के अनन्तवासुदेव मंदिर में भगवान विष्णु को समर्पित अनेक देवदासियाँ रहती थीं। जिसका उल्लेख जेम्स प्रिंसेप महोदय ने भी किया है।[19] राजा वैधनाथ द्वारा बनवाये गये सोभनेश्वर शिव मंदिर में भी बहुत सी देवदासियाँ रहती थीं।[20] दशरथ शर्मा की पुस्तक अली चौहान ड़ायनेस्ट्रीज से ज्ञात होता है कि राजस्थान के सीकर जिले के निकट स्थित हर्षनाथ मंदिर जो एक ऐतिहासिक मंदिर है। वहाँ पर पूर्वमध्यकाल में कुँवारी कन्याओं को देवदासी के रूप में नियुक्त किये जाने का साक्ष्य हमें मिलता है।[21] ऐसा ही एक अन्य उदाहरण हमें अल्हण के ताम्रपत्र (V, 1205) से ज्ञात होता है। इसमें वर्णित है कि चण्ड़लेश्वर एवं त्रिपुरेश्वर देव मंदिर की व्यवस्था एवं नृत्यागान हेतु नारियों की नियुक्ति देवदासी के रूप में की गयी थी।[22] देवदासी प्रथा का सम्बन्ध धर्म से होने के कारण समाज में देवदासियों को सम्मानीय माना जाता था। इनको इतना महत्व दिया जाता था। कि इन्हें मंदिर की बाहरी दीवारों पर उत्कीर्ण कर दिया जाता था। मध्यप्रदेश में खजुराहों, उदयपुर, उड़ीसा में भुवनेश्वर, इत्यादि स्थानों पर इस काल में बनाये गये मंदिरों में देवदासियों को अंकित किया है।[23]

आलोच्यकालीन समाज में सभी लोग देवदासी प्रथा के समर्थक नहीं थें। इस प्रथा में समय के साथ अज्ञानतावश आ गयी कुछ बुराईयों की वजह से समाज में लोगों द्वारा इसका विरोध भी होने लगा था। नाड़ोल के राजा जोजल्लदेव के शासनकाल में देवदासियाँ मंदिरों में होने वाले उत्सवों में भाग लेती थीं। परन्तु उन्होंने इस प्रथा का विराध भी किया था।[24] जैन आचार्य एवं प्रसिद्धदार्शनिक हरिभद्सूरि ने भी इस प्रथा का विरोध किया था।[25] ये सभी लोग मंदिर जैसी पवित्र स्थान को मनोरंजन का स्थान बनाये जाने एवं देवदासियों द्वारा अधिक संख्या में होने पर जीविका चलाने के लिए वेश्यावृत्ति अपनाने आदि बातों को लेकर इस प्रथा का विरोध कर रहे थें।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आलोच्यकालीन समाज में व्यवस्था की देखभाल करना, मंदिर को साफ एवं स्वच्छ रखना, भगवान की मूर्ति के समक्ष दीप प्रज्जवलन करना तथा नृत्य, संगीत और वाद्य यन्त्रों की सहायता से भक्तिमय वातावरण उत्पन्न कर लोगों को मंदिर की ओर आकर्षित करना। अपने कार्य एवं पद की दृष्टि से ये दत्ता, विक्रिता, भृत्या, भक्ता हत्ता, अलंकारा एवं नागरी आदि वर्गों में विभक्त होती थीं। देवदासी बनने के लिए समाज के सभी वर्गों के लोगों को छूट थी। धर्म से सम्बन्धित होकर प्रारम्भ होने वाली इस प्रथा में पूर्वमध्यकालीन समाज में अनेक बुराईयों का समावेश हो गया था। देवदासियों के माध्यम से मंदिर में पवित्रता और आध्यात्मिकता को उत्पन्न करने की विचारधारा इस काल में मनोरंजन तथा नारियों के शोषण का साधन बन गई थी। पवित्र मानी जाने वाली देवदासियाँ वेश्यावृत्ति को मजबूर हो गयी थीं। ये मंदिर प्रशासन तथा राज्य के लिए आमदनी का स्रोत थीं। नाड़ोल के अमिलेख से पता

चलता है कि वेश्याओं पर दशबंध नामक कर लगाये जाते थे, जो उनकी कमाई का 1/10 भाग होता था, इसका इल्लेख अलबरूनी भी करता है।[26]जब देवदासी प्रथा अपने पवित्र उद्देश्यों से भटक गयी तब समाज के कुछ लोगों ने इस प्रथा की निन्दा भी की।

(Footnotes)

1. *मत्स्यमहापुराण,* गीताप्रेस, गोरखपुर, 2017, अध्याय–70, श्लोक–41 से 64, पृष्ठ–**264, 265.**
2. दामोदर गुप्त, *कुट्टनीमतंकाव्यम्,* अनुवादक जगन्नाथ पाठक, संपादक नर्मेश्वर चतुर्वेदी, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 2017, श्लोक–742, पृष्ठ–154, 155.
3. वही, श्लोक–752, पृष्ठ–**157**.
4. वही, श्लोक–749 से 751, पृष्ठ–**156**.
5. *कल्हणकृत राजतरंगिणी,* रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, भाग–2, 1973, तरंग–4, श्लोक–36, पृष्ठ–**26.**
6. वही, तरंग–4, श्लोक–266, 274, पृष्ठ–**138, 140.**
7. *कल्हणकृत राजतरंगिणी,* रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1976, भाग–3, तरंग–7, श्लोक–858, पृष्ठ–**215**.
8. *कल्हणकृत राजतरंगिणी,* रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1979, भाग–4, श्लोक–708, पृष्ठ–**133**.
9. राधवेन्द्र प्रताप सिंह, *पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत का सामाजिक इतिहास,* कला प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–1, 2008, पृष्ठ–**106.**
10. श्री मेरूतुचार्य, *प्रबन्धचिन्तामणि,* अनुवाद पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, सम्पादक जिन विजय मुनि, सिंधी जैन ग्रन्थ माला, कलकत्ता, 1940, ग्रन्थांक–3, प्रकाश–4, प्रकरण–150, पृष्ठ–**108.**
11. के0एम0 मुन्शी, *दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर,* जनरल एडिटर आर0सी0 मजूमदार, भारतीय विद्याभवन, बॉम्बे, 1957, वॉल्यूम–5, पृष्ठ **495.**
12. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, *प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था,* न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2004, संस्करण–1, पृष्ठ–**345.**
13. दामोदर गुप्त, *कुट्टनीमतंकाव्यम्,* अनुवादक जगन्नाथ पाठक, संपादक नर्मदेश्वर, पूर्वोद्धष्त, पृष्ठ–**15**.
14. के0एम0 मुन्शी, *दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर,* पूर्वोद्धत, पृष्ठ–**495, 496**.
15. *कल्हणकृत राजतरंगिणी,* रघुनाथ सिंह, पूर्वोद्धत, भाग–2, तरंग–4, श्लोक–485, पृष्ठ–**204**.
16. उर्मिला प्रकाश मिश्र, *प्राचीन भारत में नारी,* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, संस्करण–2, 2002, पृष्ठ–**136**.

[17]. स्टेन कोनो, *एपिग्राफी इंडिका,* वॉल्यूम 9 (1907–1908), दि डायरेक्टर जनरल आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, देहली, 1981, पद्य–16, पृष्ठ–**192**.

[18]. जेस बर्गेश, *एपिग्राफी इंडिका,* वॉल्यूम–1 (1892), दि डायरेक्टर जनरल आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, देलही, 1983, पद्य–30, पृष्ठ–**310**.

[19]. ई. हॉल्ट्ज़स्च**,** *एपिग्राफी इंडिका,* वॉल्यूम–6 (1900–01), आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, देलही, 1981, पद्य–30, पृष्ठ–**204.**

[20]. *जर्नल ऑफ द बिहार एंड उड़िसा रिसर्च सोसायटी* वॉल्यूम–17, 1931, पटना, पद्य–4, 7, 8 एवं 9 पृष्ठ–**131**.

[21]. दशरथ शर्मा, *अर्ली चौहान डायनेस्ट्रीज,* एस चंद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1959, पृष्ठ–260.

[22]. वही, पृष्ठ–**260.**

[23]. उर्मिला प्रकाश मिश्र, *प्राचीन भारत में नारी,* पूर्वोद्धत, पृष्ठ–**136**.

[24]. दशरथ शर्मा, *अर्ली चौहान डायनेस्ट्रीज,* पूर्वोद्धत, पृष्ठ–**260**.

[25]. वही, पृष्ठ–**260.**

[26]. संजय श्रीवास्तव, *11वीं–12वीं शताब्दी के संस्कृत*–वाड्मय में चित्रित भारतीय समाज, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ–**191.**